HINDI SECTION

जीवनः एक उजली किरण

नफीसा अहमद
शोधार्थी, हिन्दी विभाग

"उफ्फ! इतनी वेदना! इतनी रिक्तता! अब और कुछ शेष ही न रहा! कुछ है, तो बस अंधकार और कालिमा। राम! और न सहा जाता! और देखने को भी तो कुछ न बचा! हाय! भगवान मुझे उठा क्यों नहीं लेते? कुछ तो धरती का बोझ घटे। और मुझ दीन को भी कुछ शांति मिले!..."

इन बातों से, इन भावनाओं से भला कौन अपरिचित है? हर किसी के जीवन में कभी न कभी वह क्षण आया है। जब, कहीं उन्माद के साथ, तो कहीं निर्जन कोने में सिसकियों का दामन पकड़े ये भावनाएं बस बहती गई हैं और बहती गई हैं। हर वह हृदय इन सबसे झकझोरा गया है, जिसे अजान लोक के किसी दूरदर्शी ने बड़े ही जतन से गढ़ा और संवारा है। मन में उमड़ते क्रोध, वितृष्णा के सैलाब में हम न जाने क्या-क्या सोच जाते हैं! क्या-क्या कह जाते हैं! और न जाने कितना कुछ कर जाते हैं! श्रेष्ठ शिल्पी के इस श्रेष्ठतम उपहार से कितना खिलवाड़ कर जाते हैं और करवा भी जाते हैं!

अपने चारों तरफ तो बस अंधेरा है यह मानकर जीवन रूपी इस 'किरण' को कभी झटके में फूंक देते हैं तो कभी अपनी उदासीनता से इसकी उज्ज्वलता को लगातार म्लान करते जाते हैं, बस म्लान करते जाते हैं। भूल जाते हैं हम तब, कि किरणें तो खुद प्रकाशमंडित होती ही हैं, उसका काम भी है चारों तरफ के अंधेरे को छांटना। प्रकाश फैलाना। खुशियां फैलाना और हंसी-ठिठोली का गुंजन लाना।

अब सवाल यह भी तो आता है कि- "अच्छा! तो गरीबी, निराशा, हताशा, बिछोह इन तमाम चोटों से घायल होकर भी अब हंसते ही रहें क्या? यह सब तो किताबी बातें हैं। जिस पर गुजरती है, वह ही महसूस कर सकता है। कोई यूं ही अपने खुशी से हंसना नहीं छोड़ता, जीवन नहीं छोड़ता।" शायद प्रतिपक्ष का यह तर्क कुछ हद तक सही भी है। लेकिन हाँ सिर्फ कुछ हद तक ही। बाकी सारी हदें तो मुस्कुराए रहने की, खुश रहने की, आशावादी रहने की जरूरत और संभावनाओं से लैस है।

●●●

लड़ना

डॉ. अनिरुद्ध कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग

लड़ता हूँ
अपने आप से...
बेहिसाब धक्का मुक्की होती है
मेरे ही भीतर...।
कभी यादों को रोकता हूँ मैं
उन्हें याद आने से,
कभी यादें मुझे रोकती हैं
उन्हें याद करने से...
अज़ीब लड़ाई है यह,
अपने आप से लड़ना भी !
जैसे ही रुकावट कोई आती है
इस लड़ाई में
दोनों ही झुंझला उठते हैं एक दूसरे पे
कभी यादें...
कभी मैं...
अच्छी यादें बार-बार
बार-बार आ जाना चाहती हैं
दिल के तार को
छेड़-छेड़ के
छेड़-छेड़ के...
मुस्कान ही मुस्कान बिखेर देना
चाहती हैं होठों पे
और छोड़ जातीं हैं
मुस्कुरा-मुस्कुरा के लड़ने के लिए...
डर लगता है याद करने से
भी कड़वी यादों को
हृदय के अंतरतम तक एक टीस
एक कसैली पैठ कर जाती है
चस्पा कर जाती है चेहरे पे
एक उदासी एक लाचारी...
और छोड़ जाती है उदास,
बहुत उदास होके
लड़ने के लिए...
लड़ने के लिए ख़ुद से ही।
अज़ीब लड़ाई है यह,
अपने आप से लड़ना भी !
रुसवा होते हैं और शुक्रगुजार भी
हम दोनों ही एक दूसरे के !
कभी यादें...
कभी मैं...
कितना ! अच्छा लगता है...
सब कुछ एक सिलसिलेवार ढंग से
जब याद आता रहता है
यादें खुश होतीं हैं
मैं उन्हें विस्मृत नहीं कर पाया
और ...
मैं शुक्रगुजार होता हूँ उन यादों का
बिना किसी भेदभाव के जो
मेरे अंतर्मन में आती रहीं
जो मुझसे विस्मृत न हो सकीं
मुझसे लड़ती रहीं, मुझे गुदगुदाती रहीं,
मायूस भी करती रहीं
अज़ीब लड़ाई है यह,
अपने आप से लड़ना भी !

याद तो देखो आएगी

डॉ. अनिरुद्ध कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग

जीवन की आपाधापी में जब जिनगी ठोकर खाएगी
जब औंधे मुँह गिर जाओगे और साँस हलक तक आएगी
तब याद तो देखो आएगी।

दिन चार बाद इस मस्ती के जब स्याह रात गहराएगी
तुम मानो या फिर न मानो मन में हलचल मच जाएगी
तब याद तो देखो आएगी।

मेरे गीतों की रक्त क्रांति जब नया सबेरा लाएगी
इंसानों की झूठी महफ़िल खुद जमींदोज हो जाएगी
तब याद तो देखो आएगी।

जब बादल झूम के गरजेंगे और पुरवाई लहराएगी
जब कोयल की मीठी बोली सीने में हूक उठाएगी
तब याद तो देखो आएगी।

बारिश के तूफ़ानों में जब मिलने उनसे जाओगी
ज़ुल्फ़ों की भीगी पेचों को जब हाथों से सुलझाओगी
तब याद तो देखो आएगी।

जब लैला-मजनूं, हीर-रांझा की मिसाल दी जाएगी
उषा-अनिरुद्ध सीरी-फरहाद की गाथा गाई जाएगी
तब याद तो देखो आएगी।

जब भी कोई अनारकली दीवारों में चुन जाएगी
तानाशाहों की सल्तनत जब मिट्टी में मिल जाएगी
तब याद तो देखो आएगी।

जब जाति-धरम की कड़वाहट इस दुनिया से ढह जाएगी
प्रिय को पाने की अभिलाषा सबकी पूरी हो जाएगी
तब याद तो देखो आएगी।

●●●

पुस्तकें

मंजू रंगफारपी
एम.ए.(हिन्दी), द्वितीय सत्र

पुस्तकें ज्ञान का खजाना हैं
पुस्तकें दिखाती हैं हमें राह सच्चाई की
भेद सकती हैं ये शब्दों के जाल को
जीत सकती हैं धरती और आकाश को
झाँक सकती हैं संसार का कोना-कोना
क्योंकि पुस्तकें ज्ञान का खजाना हैं
इनके साथ हमें दूर तक जाना है।

●●●

मन

मंजू रंगफारपी
एम.ए.(हिन्दी), द्वितीय सत्र

मन क्या है!
समुद्र की गहराई की तरह
जो हर वक्त हिलोरें खाता रहता है
कभी यहाँ तो कभी वहाँ
न जाने क्या-क्या सोचता है।
सोचती हूँ कि मन की गहराई को मापूँ
पर जब भी सोचती हूँ
तो अचंभा-सा लगता है।
एक मन ही तो है
जो जीने की कला सिखाता है
मन की गहराई को नापूँ तो
जीवन के हर रंग मिलते हैं यहाँ।
मन क्या है!
समुद्र की गहराई की तरह...।

●●●

असमः एक उपवन

विशाल दास
एम.ए.(हिन्दी), चतुर्थ सत्र

जिस उपवन में हर नस्ल के फूल खिलें,
जिस प्रदेश में ब्रह्मपुत्र, बराक मिलें,
इस क्षेत्र पर न्यौछावर है प्रकृति की हर खूबसूरती,
अकृत्रिमता से सजा यह राज्य है असम, प्रेम की मूर्ति,
इस उपवन में हर धर्म के फूल फले हैं चारों ओर,
निर्मल दिखाई देती है प्रेम और एकता की वह डोर,
जिस धरती के रक्षक हैं वीर पुरुष लचित,
उस धरती के लोग नहीं हो सकते अधिकारों से वंचित,
जहाँ मनाते हैं मिलकर सब जनजाति के उत्सव-रस्म,
ऐसा स्वर्गिक है मेरा उज्जवल प्रदेश असम।

●●●

कोरोना

रूमा कुमारी चौहान
एम.ए. (हिन्दी), चतुर्थ सत्र

कोरोना की दवा जादू-टोना नहीं होता,
साफ-सफाई रखने से कोरोना नहीं होता।
साबुन से हाथ धोने से कोरोना नहीं होता,
सावधानी बरतने से कोरोना नहीं होता।
भीड़ से दूर रहने से कोरोना नहीं होता,
नमस्कार के अभिवादन से कोरोना नहीं होता।
मास्क के प्रयोग से कोरोना नहीं होता,
समय रहते सचेत होने से कोरोना नहीं होता।

●●●

लिखना चाहती हूँ मैं कविता

राजिका रंगफारपी
एम.ए. (हिन्दी), द्वितीय सत्र

लिखना चाहती हूँ मैं
पर कैसे लिखूँ कविता?
कुछ लोग कहते हैं कि तुक मिल जाए तो
बन जाती है कविता
पर रुक जाती हूँ मैं यह सोचकर
क्या मैं लिख पाऊंगी कविता?
कैसे बुनुंगी मैं शब्दों के जाल
कैसे लिखुंगी कविता?
कवि के मन के भाव लिए
शब्दों में रंगकर आती है कविता
और कुछ ही पंक्तियों में सब कुछ कह जाती है,
पाठक के मन को झकझोर देती है,
आलोड़ित कर देती है कविता।
लिखना चाहती हूँ मैं
पर कैसे लिखूं कविता?
जब भी उठाती हूँ कागज और कलम
न जाने क्यों शब्द हो जाते हैं खत्म।
फिर भी मैं लिखना चाहती हूँ...

●●●

आसान नहीं

नम्रता चौहान
एम.ए.(हिन्दी), चतुर्थ सत्र

लड़का होना आसान नहीं है
लेकिन लड़की होना जितना
मुश्किल भी नहीं।
बेटा पढ़े तो...
कल का सहारा बनेगा।
बेटी पढ़े तो...
दहेज भी तो देना पड़ेगा।
बेटे की नौकरी लगी
घर के भाग जगे।
बेटी की नौकरी...
बेटी तो पराया धन है।
बेटे की तनख्वाह
घर की शान है।
बेटी की तनख्वाह
बेटी की कमाई पर कैसा हक।
पढ़ी लिखी बहू नहीं चाहिए
बेटा हाथ से निकल जाएगा।
नौकरी की जरूरत नहीं है
आखिर घर कौन संभालेगा।
लड़की होना...
आसान नहीं।

●●●

नारी शक्ति

सम्रिता कुमारी प्रसाद
एम.ए.(हिन्दी), द्वितीय सत्र

नारी तुममें है यह कैसी शक्ति?
जननी है तू, तू ही धारण करती है
पर अपने ही अधिकारों की लड़ाई
इस दुनिया में आज भी तू लड़ती है।
तेरी ममता, तेरे धैर्य की गाथा
सदियों से सुनाई गई,
तूने अपने को मिटाकर
सींचा प्रेम से घर आंगन
और लुटती रही, सहती रही।
तेरी सरलता को तेरी कमजोरी समझा
हर एक ने
पर तूने सीखा नहीं विचलित होना
नारी तुममें है यह कैसी शक्ति?

●●●

हिन्दी

रूमा कुमारी चौहान
एम.ए.(हिन्दी), चतुर्थ सत्र

हिन्दी वह भाषा है
जो दुनिया भर में बोली जाती है
यह सहज, सरल भाषा
लोगों की जुँबा पर रहती है।
हिन्दी हमारी शान है
देश का अभिमान है
देश के संविधान में इसे
गरिमामयी स्थान है।
यह भाषा अमूल्य है
और अपनी क्षमता के लिए
अपनी उपयोगिता के लिए
जन-गण द्वारा प्रशंसित भी
अखिल विश्व में सम्मानित भी।

●●●

पिता

कुमकुम ठाकुर
एम.ए. (हिन्दी), चतुर्थ सत्र

पिता हमारी शान है, पिता हमारा मान है।
पिता से ही हमारा अभिमान है।
पिता हमारे गौरव का गान है।
सुबह से शाम उनको नहीं कोई आराम
इस उम्र में मजदूरी करके घर चलना
किसी जंग से कम नहीं, पिता तुझे सलाम है।
सभी लिखते माँ के बारे में
पर पिता के मोल को जाने क्यों नहीं देखते
आखिर वे भी करते हर कोशिश
जिससे साकार हों सपने हमारे।
पिता हर दर्द छिपाकर मुस्कुराते हैं।
थोड़ा डाँट-डपट कर हमें सही राह दिखाते हैं।
पता नहीं जीवन के कितने बरस हार दिए उन्होंने
हमारे बचपन की एक मुस्कुराहट जीतने में।
पिता छाँव हैं घर परिवार के
वे न हों तो, सूना है घर-बार
पिता हमारी शान है, पिता हमारा मान है।

●●●

झुग्गी वाली

सपना कुमारी
शोधार्थी, हिन्दी विभाग

टी.वी. पर अचानक ही
एक चेहरा दिखा, कुछ जाना-पहचाना-सा मासूम चेहरा,
मैं ठिठक गई।
कहीं तो देखा है इस चेहरे को, सोचने लगी,
इस भागदौड़ की दुनिया में,
घर की जिम्मेदारी में निकलते
लोगों के बीच,
अपने घर की जिम्मेदारी उठाए
अक्सर दिखती थी ये लड़की।
उसकी झुग्गी की जिम्मेदारी का कन्धा
हमारे घर, मकान की जिम्मेदारी से कई गुना भारी है
तरह-तरह के करतब दिखलाया करती
लोगों की सहानुभूति बटोरती
बटोरती आशा,
उम्मीद भरी निग़ाहों से,
देखती हमें
मनुष्यता दिखलाते हुए हम भी कुछ पैसे अदा कर देते।
अचानक उसके दिन फिरे,
नेता, बहुराष्ट्रीय कंपनियों के ठेकेदार आए उसके द्वार
उसकी स्थिति संभालने,
झुग्गी जीवन को ख़त्म करने
लोग हर्षित हुए, मैं भी हुई
अब वह हर सुविधाओं से घिरी टी.वी पर दिखने लगी
अब गरीबी मिटेगी,
एक सामाजिक कार्य की पूर्ति हुई,
ऐसा सोचने लगी।
फिर, जैसे एक दबी हुई आवाज ने
मुझसे पूछा-
क्या सच में गरीबी मिटी है ?
क्या सच में सामाजिक कार्य पूरा हुआ ?
और आसपास देखते हुए
उस दबी आवाज ने सकुचाये हुए कहा
पता नहीं, इन्वेस्टमेंट और प्रॉफिट के इस तराजू पर
न जाने कितनी झुग्गी वाली आएंगी और जाएंगी।

●●●